8 जुलाई, 2010 को 1700 बजे कनककुन्नु पैलेस, तिरूवनन्तपुरम में सी. अच्युत मेनन स्टडी सेन्टर एण्ड लाइब्रेरी द्वारा चुनाव सुधारों के संबंध में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में भारत के माननीय उपराष्ट्रपति श्री मो. हामिद अंसारी का उद्‌घाटन अभिभाषण

यह संगोष्ठी एक ऐसे विषय पर संकेन्द्रित है जो हमारे लोकतंत्र के कार्यकरण के लिए महत्वपूर्ण है और इसलिए यहां आकर इसका उद्‌घाटन करने में मुझे प्रसन्नता हो रही है। सी. अच्युत मेनन स्टडी सेन्टर एण्ड लाइब्रेरी तिरूवनंतपुरम के बौद्धिक एवं शैक्षणिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और सामाजिक विज्ञान संबंधी अनुसंधान के लिए इसने एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में कार्य किया है।

इस संगोष्ठी की विषय वस्तु सिद्धांत एवं व्यवहार दोनों का जायज़ा लेती है इसके निहितार्थ दोनों के लिए हैं। आप जैसे प्रतिष्ठित श्रोतागण इस बात से अवगत होंगे। तथापि, इसकी संकल्पनाओं, आधार-वाक्यों, परिभाषाओं और कार्य-क्षेत्रों की समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि व्यवस्थित पुन:विचार से छानबीन किए जाने वाले तथ्यों के स्वरूप को स्पष्ट करने में निश्चय ही मदद मिलती है।

श्रोताओं में उपस्थित राजनीतिक वैज्ञानिक प्रतिनिधित्व के विचार और लोक संस्थागत व्यवस्था के रूप में राजनीतिक प्रतिनिधित्व की परिभाषा से संबंधित हन्ना पिटकिन्स के शोध ग्रन्थ के प्रकाशित होने के बाद 1967 में शुरू हुई बहस से अवगत होंगे जिसके अनुसार प्रतिनिधित्व किसी भी सहभागी के किसी एकल कार्य से उत्पन्न नहीं होता, बल्कि तंत्र-व्यवस्था की सम्पूर्ण संरचना और कार्यकरण से उत्पन्न होता है। इस कारण से राजनीतिक प्रतिनिधित्व निजी प्रतिनिधित्व से भिन्न होता है; पहला आंतरिक और अपरिहार्य रूप से परिवर्तनकारी होता है और

यह तितर-बितर तथा फैले हुए निर्वाचन क्षेत्र के लिए ऐसी रुचि या सिद्धांत का सृजन करता है जो प्रतिनिधित्व से पूर्व विद्यमान नहीं था। राजनीतिक प्रतिनिधित्व विभिन्न स्वरूप ले सकता है; यह रीतिवादी, प्रतीकात्मक, वर्णनात्मक अथवा वास्तविक हो सकता है। इनमें से कोई भी प्राधिकार व जवाबदेही के मानदंडों को स्थापित कर देता है ताकि अपनाए गए प्रतिनिधित्वमूलक लोकतंत्र के प्रयोग की प्रभावकारिता तथा सफलता का आकलन किया जा सके।

13 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा में जवाहर लाल नेहरू द्वारा उपस्थित किया गया लक्ष्यों एवं उद्देश्यों संबंधी संकल्प को स्मरण करना आज प्रासंगिक होगा जिस में इस बात पर जोर दिया गया था कि 'इस संप्रभुत्वशाली एवं स्वतंत्र भारत की सभी शक्तियां और प्राधिकार, इसके संवैधानिक घटक और सरकार के अंग जनता से उद्भूत होते हैं।' इसके अनुसरण में संविधान की उद्देशिका में 'हम भारत के लोग' में भारत को न्याय, स्वतंत्रता, समता एवं बंधुता को बढ़ाने के प्रति समर्पित देश बनाने का दृढ़ संकल्प किया गया है। इसके मूल पाठ में आवश्यक ब्यौरों को उल्लिखित किया गया है; वयस्क मताधिकार पर आधारित एक प्रतिनिधिमूलक, संसदीय, लोकतंत्र; तथा इसके उप-पाठ में विधि-शासन का उल्लेख किया गया है। इन आवश्यकताओं से संबंधित चार तत्वों को न्यायिक निर्णयों ने परिवर्धित एवं रेखांकित किया है।

1. प्रजातांत्रिक ढांचा संविधान की मूलभूत संरचना का हिस्सा है। यह जनता को अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने की क्षमता तथा जनता का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रतिनिधियों में विश्वास करने के विचार के अनुसार कार्य करता है।

2. प्रजातंत्र लोकप्रिय संप्रभुता के मूलभूत अनुमान के अनुसार कार्य करता है जहां देश जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासित होता है और वहां नागरिकों को प्रभावित करने वाले निर्णयों तक पहुंचने में समानता विद्यमान होती है।

3. जनता की आकांक्षा का पता लगाने के लिए आवधिक निर्वाचनों के बिना कोई प्रजातंत्र नहीं हो सकता। इन्हें वास्तविक रूप में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष होना चाहिए।

4. प्रजातंत्र सरकार के गठन एवं संचालन की एक तंत्र-व्यवस्था मात्र नहीं है, बल्कि यह नागरिकों के बीच संबंधों के एक मैट्रिक्स का प्रतिनिधत्व करता है जो प्रत्येक नागरिक को अपना जीवन पूर्णतया, सम्मानपूर्वक जीने तथा अपनी क्षमताओं को विकसित करने, उद्यम करने तथा आनंद मनाने में समर्थ बनाता है।

मित्रो,

हमारा आज का विषय चुनाव सुधारों का है। इसके विभिन्न आयामों पर सरकारी और गैर-सरकारी मंचों पर चर्चा की गई है। इस संबंध में कई सुझाव दिए गए हैं। कुछ सुझावों को नियमों की पुस्तिका में अंतर्विष्ट किया गया है। अन्य सुझाव कार्यान्वित नहीं हो पाए हैं। जहां तक मुझे ध्यान है कि यह वाद-विवाद चयनात्मक है, न कि व्यापक।

हमारे संविधान निर्माताओं ने राज्य की विशिष्ट संस्थाओं के लिए विशिष्ट चुनाव प्रणालियों को अपनाया। जहां केन्द्र और राज्य विधानमंडलों के निम्न सदनों के लिए निर्वाचन वयस्क मताधिकार तथा विधान सभाओं के परिसीमन के पश्चात् सबसे अधिक मत पाने वाले उम्मीदवार पर आधारित था, वहां उच्च सदन के निम्न सदनों के लिए निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर था। राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनावों के लिए एक भिन्न निर्वाचक-मंडल के साथ एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की सदृश निर्वाचन पद्धति निर्धारित की गई है।

चूंकि प्रत्येक निर्णय का एक संदर्भ होता है, अत: अवसर और विधायी प्रयोजन का पुनरावलोकन शिक्षाप्रद होगा। 8 अगस्त, 1947 को प्रस्तुत किए गए अल्पसंख्यकों के अधिकार संबंधी प्रतिवेदन में प्रतिनिधित्व का मुद्दा संविधान सभा में चर्चा के लिए आया। इसके

परिणामस्वरूप हुए वाद-विवाद में एक सदस्य ने अर्हक संयुक्त निर्वाचक मंडल का सुझाव देते हुए और यह शर्त रखते हुए एक संशोधन उपस्थित किया कि निर्वाचित घोषित किए जाने से पूर्व अनुसूचित जाति का उम्मीदवार "आरक्षित स्थान के लिए चुनावों में अनुसूचित जातियों द्वारा दिए गए मतों के 35 प्रतिशत से अन्यून मत प्राप्त करेगा।" उन्होंने तर्क दिया कि अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित स्थान में विजयी उम्मीदवार का अनुसूचित जाति संबंधी प्रतिनिधित्व प्रदर्शित करना महत्वपूर्ण है। यह अन्य सदस्य ने तर्क दिया कि "अल्पसंख्यकों के मन में यह विश्वास होना चाहिए कि उन लोगों द्वारा विधान मंडल में उनके विचारों को उचित रूप से रखा जाता है जिनमें उन्हें विश्वास है और जिनके चुनाव में उनका काफी योगदान है।" एक अन्य प्रस्ताव आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों को समाप्त किए जाने और विधानमंडलों के निम्न सदनों हेतु निर्वाचन के वास्ते संचयी मतदान के माध्यम से बहुल सदस्य वाले निर्वाचन क्षेत्रों के साथ आनुपातिक प्रतिनिधित्व वाली प्रणाली आरंभ किए जाने का था।

इसके उत्तर में, डॉ. अम्बेडकर ने आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली पर सबसे अधिक मत प्राप्त करने की प्रणाली को अधिमान्यता दिए जाने हेतु तीन कारण दिए:

- आनुपातिक प्रतिनिधित्व के लिए आवश्यक साक्षरता के उच्च स्तर का अभाव।
- खंडित विधान मंडल की आशंका जिससे स्थायी सरकार और कानून व न्याय व्यवस्था को बनाए रखने में बाधा पहुंचेगी।
- विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों तथा बहुसंख्यक समुदायों के बीच पहले से हुए समझौते का भंग होना।

यह स्मरणीय है कि द्विसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र (उत्सादन) अधिनियम, 1961 (जनवरी) ने दो सदस्यीय तथा तीन सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र को समाप्त कर दिया। जिनके लिए 1952 तथा 1957 के आम चुनावों में चुनाव हुए थे।

सबसे अधिक मत प्राप्त करने की प्रणाली कितनी अच्छी तरह से कारगर रही है? लोक सभा चुनावों का निर्वाचन रिकार्ड यह दर्शाता है कि पिछले पांच आम चुनावों में दिए गए वैध मतों का 50 प्रतिशत या इससे अधिक मत प्राप्त करने वाले विजयी उम्मीदवारों की संख्या 121 से 221 के बीच रही है; 2009 में यह 121 थी। पूर्व में, वेंकटचेलैय्या आयोग ने तीन आम चुनावों के अभिलेखों का सर्वेक्षण कर यह निष्कर्ष दिया कि लोक सभा के दो-तिहाई से अधिक सदस्य और कुछ राज्य विधान सभाओं के लगभग 90 प्रतिशत सदस्य अल्प मतों से निर्वाचित हुए थें।

हमारे निर्वाचन परिदृश्य पर नजदीक से नजर रखने वाले पर्यवेक्षक ने सही तौर पर उस तथ्य पर ध्यान केन्द्रित किया है जिसे वह गहन होते उस प्रतिनिधित्वमूलक प्रजातंत्र का 'विरोधाभास' कहते हैं जो स्वयं प्रतिनिधित्व के ही विचार की क्षीणता के साथ मौजूद रहता है।

वह यह भी कहते हैं कि यह विरोधाभास प्रजातांत्रिक कार्यक्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग भूमिका अदा करता है और सर्वाधिक सामान्य तौर पर गतिशील राजनीतिक प्रक्रिया और एक गैर-लचीली संस्थागत प्रतिक्रिया के बीच संघर्ष का रूप ले लेता है।

III

इस स्थिति को देखते हुए और इन संघटनात्मक संरचनाओं को स्थापित किए जाने के छः दशक बाद अपरिहार्य रूप से कुछ प्रश्न मस्तिष्क में उठते हैं:

- निर्वाचित प्रतिनिधि की प्रतिनिधिकता क्या है? हमारी प्रणाली बहुमत की बजाय बहुलता के सिद्धांत पर कार्य करती है।

- गणराज्य के तीन दशक से विधानमंडल के निचले सदनों में सबसे अधिक मत प्राप्त करने की निर्वाचन प्रणाली से खंडित विधानमंडल और इस स्वरूप की व्यवस्थागत अस्थिरता क्यों पैदा हुई है जो आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से संबंद्ध थी?

- क्या प्राप्त मतों की हिस्सेदारी और विधानमंडल में जीते गए स्थानों के बीच असंगतता से हमारे विधायकों की विश्वसनीयता और प्रतिनिधिकता का अपक्षय हुआ है?

- क्या इस सुझाव में दम है कि सरकार और निर्वाचन आयोग द्वि-चक्रीय प्रणाली को लागू करने के लिए ध्यानपूर्वक पूर्ण जांच करे जिसमें पहले चक्र के बाद वाले दिन प्रत्येक निर्चाचन क्षेत्र में दो अग्रणी उम्मीदवारों के बीच द्वितीय चक्र कराया जाए? क्या सभी राजनीतिक दलों के परामर्श से अभी ऐसा परीक्षण कराने का उपयुक्त अवसर है?

- क्या वर्तमान निर्वाचन प्रणाली 'आप किसमें विश्वास करते हैं' और 'आप क्या हासिल करना चाहते हैं' की बजाय 'आप कौन हैं' और 'आप कहां रहते हैं' द्वारा परिभाषित राजनीति को प्रोत्साहित करती है?

- मुस्लिमों से कम प्रतिनिधित्व और राजनीतिक शक्ति की असमान सुलभता के संबंध में प्राप्त होने वाली शिकायतों के निवारण के लिए क्या किया जा सकता है? आंकड़े बाध्यकारी और चिंताजनक वाले हैं।

- वर्ष 2026 तक लोक सभा तथा राज्य विधान सभाओं में स्थानों की संख्या नियत रखने वाले 84वें संशोधन के एक व्यक्ति, एक मत, एक मूल्य के सिद्धांत के संदर्भों में हम निहितार्थों को कैसे दूर करेंगे?

देवियो और सज्जनो,

निर्वाचन प्रणालियां महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये जनता के मतों को विधायी स्थानों में और इस प्रकार राजनीतिक शक्ति में तब्दील करती हैं। इनकी विश्वसनीयता और प्रतिनिधिकता सामाजिक-आर्थिक प्रगति के लिए अत्यावश्यक स्थिर राजव्यवस्था सुनिश्चित करने के मामले में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

निर्वाचन पद्धतियों का भी दलगत पद्धतियों के विकास, उनकी भूमिका और उनकी सम्बद्धता पर अनुचित प्रभाव पड़ता है। यह अंत:दलीय लोकतंत्र को बढ़ावा दे सकती हैं या मतभेद को दबा सकती हैं। निर्वाचन पद्धतियां राजनीतिक लामबन्दी, गठबंधन और सामाजिक समायोजन की प्रकृति पर भी प्रभाव डाल सकती हैं। यह सामाजिक द्वन्द्व को भड़का सकती हैं या द्वन्द्व समाप्त करने में सहायता कर सकती हैं।

इस प्रकार हमारे लिए गत छह दशकों के अपने अनुभव, हमारी संवैधानिक संरचना के अधिदेश और हम अपनी राज व्यवस्था से जो भावी परिणाम चाहते हैं, के संदर्भ में अपनी निर्वाचन पद्धति पर विचार करना महत्वपूर्ण है।

निर्वाचन पद्धति में सुधार के मुद्दे पर किसी भी चर्चा में प्रतिनिधिकता को बढ़ाए जाने, सामाजिक समायोजन और सुलह को बढ़ावा देने, कमजोर वर्गों के लिए संवैधानिक और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षोपायों को शामिल करने, जवाबदेह स्थिर और सक्षम शासन प्रदान करने, विधायी निगरानी को बढ़ाने और प्रभावी तथा आतंरिक-लोकतांत्रिक राजनीतिक दलों के उदभव और विकास को बढ़ावा देने के संबंध में विचार करना चाहिए।

मैंने आज चुनाव सुधारों के कुछ आयामों पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया है, जिन पर मेरे विचार से अच्छी तरह से ध्यान नहीं दिया गया है। मेरा मानना है कि हमें निर्वाचन सुधारों के लिए यंत्रवत् विश्लेषणों और सुझावों से भी सावधान रहना चाहिए। एक विश्लेषक की राय है

कि सुधारों को "विधायी आज्ञा द्वारा शुरू नहीं किया जा सकता है बल्कि इसके लिए कठोर मेहनत की राजनीति और आत्म-परिवर्तन की आवश्यकता होती है।" क्या कठोर मेहनत की राजनीति और आत्म-परिवर्तन के लिए हमारी राज-व्यवस्था, राजनीतिक दल, उनका नेतृत्व और हमारे निर्वाचित प्रतिनिधि तैयार और उद्यत हैं?

मैं, मुख्य मंत्री श्री वी.एस. अच्युतानंदन और सी. अच्युतया मेनन स्टडी सेंटर एण्ड लाइब्रेरी को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने आज इस संगोष्ठी का उद्घाटन करने के लिए मुझे आमंत्रित किया। मैं इस संगोष्ठी में उद्देश्यपूर्ण विचार-विमर्श की कामना करता हूं और इसलिए मैं संगोष्ठी की रिपोर्ट पढ़ने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा हूं।

****